Conclusion

उपसहांर

[stamp]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय "शास्त्रीय उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में राजस्थानी लोकसंगीत में "माण्ड" का स्थान एवम् राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में "माण्ड" गायन शैली का तुलनात्मक अध्ययन है, इस प्रबन्ध को छ अध्यायों मे विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय को लोक संगीत के तात्पर्य से आरम्भ करके लोक संगीत का उदभव व विकास की और आते हैं अर्थात लोक+संगीत, सामाजिक प्राणी और संगीत। जनसाधारण के जीवन में रचा-बसा संगीत है जिसमें कहीं कोई नीयम, बन्धन निश्चित सीमा रेखा या मनुष्य निर्मित सिद्धान्तों का पालन ना करना पड़े जो कि आम जनता द्वारा निर्मित होता है तथा परिस्थिति के अनुरुप रचा बसा हो जिसका मूलाधार मानव के दैनिकजीवन से जुड़े प्रत्येक पहलु को उजागर करना होता है। मानव की सहज प्रवृत्ति का विकसित रुप है जो कि एक ह्रदय से दुसरे ह्रदय में स्वतः ही अपना स्थान बनाते आ रहे हैं जिन्हे ना तो विधिवत सीखा जाता है ना ही इनके कोई शास्त्रबद्ध सिद्धान्त हैं, ये तो जनसाधारण द्वारा कोई भी घटना शब्दों के माध्यम से एक दृश्यात्मक रुप में चित्रित हो उठते हैं, ये ही लोक संगीत की विशेषता है।

जब हम लोक संगीत के उद्भव व विकास की ओर आते हैं तो हम देखते हैं कि लोक संगीत की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम है, जिनमें से प्रमुख है भाषा। यह तो स्पष्ट है कि स्थानान्तर पर भाषा में अन्तर आता है। सभ्यता व भाषा के आयामों में लोक संगीत का कलेवर भिन्न भिन्न होता है पर आत्मा एक। मनुष्य जब भाषा से परिचित हुआ तो अपने भावों को अपने अपने अनुसार व्यक्त करना आरम्भ किया तथा अपने आप पास कि गतिविधिओं को ही स्वरों में बांधकर गुनगुनाने लगा तथा ये कर्णप्रिय ध्वनियां समायानुसार विकसित होते हुए गीतों के रुप में हमारे समक्ष आईं। लोकसंगीत के मुख्य आधार स्वर, भाषा, लय तथा ताल हैं। इन्हीं का मिश्रित रुप लोक संगीत को जन्म देना है तथा मानव के सुख दुख की कहानी को चित्रित करता है तथा इसके साहित्य में हमें तत्कालीन सभ्यता एवम् संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रुप में मिलता है। साहित्यक दृष्टि से इसका क्षेत्र व्यापक है

व अलग अलग प्रदेश की जनपदीय भाषाओं से इनका प्रारुप बना है और एक वट वृक्ष की तरह विभिन्न शाखाओं पत्तों, फलों-फूलों के रुप में प्राकृतिक रुप में स्वत: ही विकसित हो रहे हैं।

इसी अध्याय में हम लोक संगीत के उद्भव व विकास के क्रम को आगे बढाते हुए राजस्थान के लोकसंगीत पर आते हैं।

राजस्थान एक ऐसा प्रदेश जहाँ देखो चारों और रेतीली तपती धरा, दुर-दूर तक हरियाली का कोई नामोनिशान तक नहीं। दिखाई देता है तो सिर्फ सूर्यदेव की अग्नी से तपती रेत! रात में चांदनी की शीतलता से वही अग्नी उगलती रेत शीतल प्रतीत होती है ये एक अलग ही एहसास है यहाँ के जन: जीवन का। पानी की नितान्त कमी किन्तु यहाँ के जनमानस के ह्रदय में हमेशा संगीत की स्वर लहरें, मानो ऐसी किसी भी कमी का कोई एहसास होने ही नही देती है। राजस्थानी धरा से उपजे ये लोकगीत सामाजिक, ऐतिहासिक, पारम्परिक विभिन्न तत्वों को उजागर करते हैं एक और जहाँ इन गीतों में रिश्तों की नज़ाकत झलकती है वहीं दूसरी और परम्परा व संस्कारों से हम पूर्णत: परिचित होते हैं। राजस्थान के लोक जीवन से जुड़े प्रत्येक अनुभव इन गीतों के माध्यम से हमारे सामने आते हैं जीवन जीने की एसी शैली जो हमेशा नवचेतना का संचार करती है, इन गीतों में ऐतिहासिक घटनाओं का ऐसा चित्रित रुप हमारे समक्ष आता है कि आज भी वीरों की गाथाओं को सनुकर हमारे रोगंटे खड़े हो जाते हैं, ऐसा काव्य जो जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलू को प्रकाशमान करता है, इन गीतों की परम्परा वर्षो से चली आ रही व जनजन के कण्ठों में विद्यमान है।

राजस्थान के लोग, जीवन से जुड़े प्रत्येक अनुभव को संगीत के माध्यम से व्यक्त करने में हमेशा तत्पर रहते हैं, इस अध्याय के अन्त में मैनें सुविधानुसार लोकगीतों को चार भागों में वर्गीकृत किया है।

पारिवारिक लोकगीत	धार्मिक लोकगीत	संस्कारगीत	विविध प्रकारके गीत
मातृत्व गीत/वात्सल्यगीत भाई-बहन के गीत/देवर भाभी के गीत/सास - बहु सम्बन्धी गीत / माता-पिता एवम् पुत्री सम्बन्धी गीत / दामपत्य गीत.	देवी-देवताओं के गीत भक्ती गीत उत्सव गीत पर्वोत्सवगीत मेलेके गीत.	जन्म से मरणतक के १६ संस्कारके गीत	श्रम गीत एतिहासिकगीत ऋतुगीत व्यवसायिक गीत

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में सौन्दर्य रस पर चर्चा करते हुए हम माण्ड में सौन्दर्य उत्पत्ति में सहायक तत्वों का वर्णन किया है।

तत् पश्चात माण्ड गायन शैली में प्रयुक्त होने वाले रसों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। एवम् शास्त्रीय संगीत व उपशास्त्रीय संगीत में माण्ड का स्थान को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। माण्ड ऐसी गायन शैली, जिसमें शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय-संगीत तथा लोक संगीत तीनों में ही अपना विशिष्ट स्थान है। शास्त्रीय कलाकारों द्वारा इस गायन शैली को शास्त्रीय संगीत से ओत प्रोत मानना व लोक कलाकारों को इसे लोक संगीत के अन्तर्गत-मानना आता है। शास्त्रीय कलाकार माण्ड के विशिष्ट स्वर समूह में किसी अन्य राग के स्वरों को किस प्रकार लगायें कि माण्ड की एक खूबसूरत रचना हमारे सामने आए। माण्ड व शास्त्रीय संगीत में परस्पर सम्बन्ध की बात करते हैं तो पाते हैं कि माण्ड के विशिष्ट स्वर समूह में किसी अन्य राग के मुख्य स्वरों को जोड़ दे तो माण्ड की एक नवीन रचना हमारे सामने आती है, इसी से माण्ड गायन शैली का शास्त्रीय रूप प्रकट होता है। माण्ड के इन गीतों में रागों के रागांग रुप में टुकड़े प्रयोग में लिए जाते है, स्वरो की छूट के माध्यम से माण्ड की नवीन रचना का निर्माण होता है।

माण्ड : म म, रे ग रे सा, म प ध म, प , म ग म रे ग, रे सा, ध ध नि प, ध म,
पग,[सा] रे सा। म म, रे ग, रे सा, रे म प, प ध प, सां नि ध म, प ग ।
सां नि ध, नि प, ध म, प ध सां, गं सां, नि, ध, निप, धम, पग, सांनिधम, प,
गम, रे ग रे सा।

देस राग : रे म प, नि ध प, प ध प म, ग रे, ग सा।
रे म प नि ध प, म प नि सां रें सां नि सां नि ध म ग रे सा।
नि सा, रे म प ध म ग रे, प, ऩि सा, रे म प ध नि ध
प ध म ग रे, प़ ऩि सा रे म प ध नि सां, नि ध प ध म ग रे,
प, ऩि सा, रे म पनि सां रें सां नि ध प ध म ग रे, प।

माण्ड में देश :

				गम	पध	पध निसां -	निसां	ध	धनि			
				के ऽ	सरि, याऽ	ऽऽ,, ऽ	बाऽ	ल	मऽ			
पध पनि धप	मग रेग -सा	मरे म	म		प	धनि धप						
आऽ बोऽ ऽऽ	नीऽ ऽऽ ऽप	धाऽ रो	ऽ		म्हा	रे ऽऽ						

प - -
दे ऽ ऽस,

केसरिया बालम आवोनी पधारो, म्हारे देस,
पधारोम्हारे देश, जी केसरिया बालम.......
गम पध निसां निसां ध , धनि पध पनि धप मग रेग -सा
मरे मम पध नि ध प पऽ पनि निसां नि धनि धनि पध पनि पध मग गम
पध पध निसां।

खमाज राग : सा ग म प ध नि सां,सां नि ध प म ग रे सा ।

नि ध म प ध, म ग ।

माण्ड में खमाज : नि नि सां ना ध प प प नि ध प

ओ लूँ ड़ी ल गा य नै सि ध नै ऽ

मग ग -

चा ल्या ऽ

ओंलूँड़ी लगाय नै चाल्या ओ बादीला राज,

ढोला म्हासूँ नेहड़लो लगाय बालम भूल गया।

- नि नि सां नि ध प प प नि ध प मग ग - ग मध पम प म

ग ग सारे सा सा।

उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में माण्ड गायन शैली को कुछ हद तक हम ठुमरी गायकी के समान पाते हैं वो इसलिए क्योंकि कभी कभी कुछ विशेषताएँ जो हम ठुमरी गायकी में पाते हैं वो माण्ड गायन शैली में मिल जाती हैं, किन्तु ठुमरी सर्वमान्य उपशास्त्रीय गायन शैली है, तथा माण्ड के विषय में यही कहना उचित होगा की कलाकार की कौशलता पर निर्भर करता है कि माण्ड गायन शैली को क्या आधार दिया जाए!

किन्तु जब हम राजस्थान के लोक कलाकारों द्वारा माण्डगायन शैली को सुनते हैं तो "माण्ड" को राजस्थानी लोकसंगीत से ओत प्रोत ही पाते हैं यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान के लोक कलाकारों द्वारा गाई गई माण्ड में उन कलाकारों के अपने नियम हैं उनके द्वारा निर्मित कई राग हैं जिन्हें वो शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत मानतें हैं। जिनको हमने सुविधानुसार "लोकराग" से पारिभाषित किया है, ये लोकराग इन कलाकारों द्वारा ही निर्मित किए गए हैं तथा जिन्हें वो अपने पूर्वजों द्वारा सीखते आ रहे हैं जिनका कोई लिखित रूप हमारे सामने नहीं है ये सिर्फ पीढ़ी दर पीढ़ी लोक कलाकारों द्वारा अपनाए जा रहे हैं, जिनका स्वरूप इनका अपना है जो हमारे शास्त्रों से बिल्कुल अलग है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में राजस्थानी लोकसंगीत माण्ड व माण्ड के विकास क्रम को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

"माण्ड" सम्पूर्ण राजस्थान में गाया जाता है तथा राजस्थान के विभिन्न अंचलों में अपने पौरांणिक स्वरूप में व परम्परागत रूप में विद्यमान है जैसे जैसलमेरी माण्ड, बाड़मेरी माण्ड, बीकानेरी माण्ड, उदयपुरी माण्ड, जोधपुरी माण्ड! स्पष्ट शब्दों में कहें तो माण्ड मुख्यत: इन्ही क्षेत्रों में गाया बजाया जाता है।

राजस्थान के क्षेत्र में माण्ड अत्यधिक लोकप्रिय हुआ ऐसा भी कहा जाता है कि प्रारम्भ में जैसलमेर को माण्ड प्रदेश कहा जाता था तथा इसी प्रदेश से माण्ड गायन शैली की व्युत्तपत्ति मानी जाती है। संगीत प्रेमी राजा-महाराजाओं ने अपने समय में शास्त्रीय संगीत से ओत-प्रोत ऐसी शैली को अपनाया जो कि माणड के रूप में विकसित हई, माण्ड शैली कब से चली आ रही है या इसकी उत्पत्ति कब हुई इसका एक निश्चित समय में जवाब देना तो असम्भव है किन्तु ये निश्चित है कि ये शैली रजवाड़ों सामन्ती परिवेश में फली-फूली और विकसित हुई। राजस्थानी भाषा में प्राय: माण्डना से तात्पर्य बनाना है, मुख्यत: घर के बाहर आगँन में अल्पना बनाते हैं, या फिर हाथों में महन्दी माण्डते हैं। "माण्डना" अर्थात बनाना अत: संगीत में स्वरों को जमा-जमाकर खूबसूरती से गाना ही माण्ड है। विशिष्ट स्वर समूह को विशिष्ट अंदाज में गाना ही माण्ड की मुख्य विशेषता होती है। राजा महाराजाओं के समक्ष उनके क्रिया-कलापों को स्वर लहरी में गाना माण्ड की विशेषता रही किन्तु इस प्रकार के गायन के लिए एक विशिष्ट वर्ग नियुक्त किया गया जो कि इस शैली द्वारा राजा महाराजाओं का गुणगान या उनके द्वारा किये गए प्रत्येक क्रिया-कलापों का वर्णन करने में सक्षम हो, ढोली, मांगणियार, मिरासी, लंगें आदि विभिन्न जातियां इस शैली को मोड़ तोड़कर खटकों के साथ शास्त्रीय गीतों के समान मीड़, मुरकी, व छोटी-छोटी तानों के साथ गाते हैं। भावों को भाषा रूपी धागे में पिरोकर भांति भांति की गायनकला की बारिकियों के साथ प्रस्तुत करना इन कलाकारों की अपनी कला कौशल पर निर्भर करता है। प्रत्येक अवसर तथा प्रत्येक पल में घटित घटनाओं का वर्णन, जीवन सें सम्बन्धित छोटी छोटी बातों

को भी काव्य रूप में बांधकर माण्ड के स्वरों में डालकर विशिष्ट रचना के रूप में गाया जाता था।

माण्ड शैली को इतिहास दर्ज करने के दृष्टिकोण से देखें तो माण्ड शैली का प्रादुर्भाव क्षितिज के समान है जो जितना चाहो पकड़ में नही आता, अतः इस गायन शैली का प्रारम्भ कब व कहाँ से हुआ यह सर्वथा अज्ञात ही है। ऐसा प्रतीत होता है माण्ड और राजस्थान की धरा, दोनों का जन्म-जन्म का साथ है! इस कला को इस धरा के बांशिदे परम्परागत रूप में सीखते व माण्ड के सुरों को पकड़ते आ रहे हैं तथा माण्ड गायन शैली का विकास उसकी प्रस्तुती की परम्परा को बनाए रखने को ही कहा जा सकता है।

तथा माण्ड शैली के क्रमिक विकास पर यदि दृष्टि डालें तो यह शैली रजवाड़ों से निकलकर जनता के बीच मंचो पर एक प्रदर्शन कला के रूप में स्थापित हो रही है। प्रस्तुत अध्याय में माण्ड के विकास क्रम के पश्चात हम राजस्थानी लोकसंगीत और ताल तथा माण्ड गायकी में ताल का स्थान व माण्ड गायन शैली में प्रयुक्त होने वाले ताल वाद्यों का वर्णन किया गया है। माण्ड गायन शैली में प्रयुक्त होने वाले प्रायः कमाइचा, सारंगी, रावणहत्था, मोरचंग, खरताल, सुरिंदा, मुरला, ढोल, ढोलक व तबला आदि वाद्यों का वर्णन किया गया है।

किसी भी समाज की महानता उसकी सभ्यता संस्कृति उसके परिवेश पर निर्भर करती है तथा भाषा उस समाज का बाह्र रूप है, जिससे उसकी सम्पन्नता वैभवता का परिचय हमें प्राप्त होता है, राजस्थान में हर बारह कोस की दूरी में भाषा में अन्तर आ जाता है उसका प्रभाव हमें संगीत में भी मिलता है, उच्चारण भेद, स्वर लगाव, स्वरों का उतार चढाव व ठहराव जयपुर उदयपुर जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर व बाड़मेर आदि स्थानो में माण्ड गायन शैली में अन्तर होना स्वाभाविक है। राजस्थान की विभिन्न भाषाओं में लिखि गई माण्ड भाषागत दृष्टि से काफी मिलती हुई प्रतीत तो होती है किन्तु क्षेत्रीयता के आधार पर बँटी हुई अलग-अलग कलाकारों द्वारा प्रस्तुती अपनी अलग विशिष्टता लिए हुए होती है।

राजस्थान में माण्ड गायन शैली का गायन करने वाली कुछ व्यवसायिक जातियां हैं, जिनकी प्रत्येक की अपनी अलग विशेषता है। उनके गले की हरकतें, उनकी अदायगी, स्वरों का लगाव आदि प्रत्येक को अपनी अलग पहचान दिलाता है उदाहरणार्थ लंगा जाति में गायन के साथ साथ वाद्यों का प्रभाव हमें दिखता है वाद्यों मे दक्षता हमें स्पष्ट रूप में दिखती है, वहीं मांगणियार जाति के कलाकारों में मुरकी, खटकों आदि अंलकरणों का प्रयोग ज्यादा किया जाता है। अर्थात प्रत्येक जाति के कलाकारों की अपनी अदायगी व अपनी परम्पराएँ इनको अलग करती है।

प्रस्तुत अध्याय में इन सभी गायक जातियों के संदर्भ में जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास इस अध्याय में किया है, ये निम्न जातियां – लंगा, मांगणियार, ढोली, मिरासी आदि है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में माण्ड गायन शैली की परम्परा, जन जीवन पर उसका प्रभाव व वर्तमान माण्ड गायकी का महत्व आदि निम्न बिन्दुओं पर अध्ययन किया गया है।

राजस्थान के सामन्ती परिवेश में पनपी हुई माण्ड गायन शैली अपना स्वन्त्र अस्तित्व रखती है। यह एक ऐसा संगीत है जो शास्त्रीय संगीत व लोकसंगीत की मध्य की कड़ी है, समयानुसार लोक साहित्य भी प्रबल होता है। राजस्थान कि विभिन्न रियासतों में अधिकांश शासक कला प्रेमी हुए, इन शासकों ने मूर्धन्य कलाकारों को आश्रय देकर अपने सरंक्षण में कला के विकास में अतुलनीय कार्य किया। शासकों द्वारा दरबार में शास्त्रीय कलाकारों व लोक कलाकारों को यथायोग्य स्थान दिया जाता था, तथा संगीत के दोनों ही रूप विकसित होने लगे तथा संगीत में धरानों का विकास हुआ। लोक-संगीत में माण्ड भी एक परम्परागत गायन शैली है राजा-महाराजाओं के समक्ष गायी जाने वाली इस धीर गंभीर मधुर शैली को पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्यों द्वारा आगे बढ़ाया गया किन्तु निरन्तर निखरती इस कला को हम घराने के रूप में विकसित नहीं पाते हैं, कुछ विशिष्ट जाति के लोक कलाकारों जैसे लंगा आदि अपनी ही जाति के समूह के लोगों में गुरु शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हैं उनकी गुरु शिष्य बनाने की पूर्ण प्रक्रिया "दरूद" कहलाती है। किन्तु घराने के रूप में इन

कलाकारों की श्रृंखला हमें प्राप्त नहीं होती, इस जाति के कलाकारों में ये कला रक्त की धारा के समान बहती आ रही है, इस कला को अपनाने वाले अन्य कलाकार इस शैली से प्रभावित होकर गुरु से सीखते हैं किन्तु जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में एक गुरु अपने शिष्य को गायकी के गुण सिखाता है, फिर वह शिष्य अपने शिष्य को, ये क्रम चलता है उस प्रकार का क्रम हमें "माण्ड शैली" में दिखाई नहीं देता है।

चतुर्थ आध्याय में आगे आते हैं तो माण्ड गायन शैली का जीवन पर प्रभाव व माण्ड गायन शैली का महत्व पर वर्णन किया गया है। जीवन के प्रत्येक पहलू को दर्शाती राजसी परिवेश में गाई जाने वाली ये गायन शैली आज आम जनता की रुचि की शैली बन चुकी है। आज माण्ड मुख्यत: हर जगह गाया जाता है, तब व अब की प्रस्तुति में थोड़ा अन्तर जरुर आया है पहले ये शैली राजा महाराजाओं के समक्ष ही प्रस्तुत की जाती थी किन्तु अब इसका प्रस्तुतीकरण आम श्रोताओं के लिए मंच पर किया जाता है, राजा-महाराजाओं के काल से निकलकर आज हम भारत के स्वतन्त्र नागरिक इस गायन शैली को सुन रहे हैं व सीख रहे हैं किन्तु इस शैली में आज भीं पारंपरिक गीतों का वर्चस्व रहता है और इन गीतों के अन्दर छुपे हुए भावों को आज भी उसी रुप में प्रस्तुत किया जाता है। राजस्थान में आज भी कुछ समृद्ध व्यक्ति व्यवसायिक लोक कलाकारों को अपने घरो में आयोजित शादी-विवाह आदि कार्यक्रमों में गाने बजाने को बुलाते हैं। माण्ड गायन की इन व्यवसायिक जातियों में महिलाएँ आज भी शादी विवाह, मृत्यु अर्थात सुख-दुख दोनों में अपने जजमानों के गाने जाती हैं।

राजा महाराजाओं के काल में प्रत्येक कलाकार का स्थान योग्यता के अनुसार निश्चित हुआ करता था तथा कलाकार अपनी योग्यता व अपने पद के आधार पर अपनी प्रस्तुति देता था, निश्चित पद व निश्चित कार्य के तहत महाराजाओं द्वारा इन कलाकारों को रहने के लिए सुविधा प्रदान की जाती थी। प्राय: इन कलाकारों के घर राजदरबार (महल) से कुछ ही दूरी पर होते थे तथा इन सभी लोक कलाकारों को एक ही स्थान दिया जाता था उसी आधार पर आज भी इन कलाकारों के घर क्रमश: पास-पास होते हैं। प्राय: उदयपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर आदि क्षेत्रों में एक निश्चित मौहल्ला इन गायक

कलाकारों का आज भी हमें देखने को मिलता है, जहाँ पर ये सभी लोग इस पांरम्परिक शैली का निर्वाह करते हैं जिनके घरों में आज भी इन मधुर गीतों का बोलबाला है, जिन्हें ये अपने बुजुर्गों से सुनते व सीखते आ रहे हैं व आज आम श्रोता तक पहुँचा रहे हैं।

हालांकि ये गायन शैली वर्तमान में सभी कलाकार प्रस्तुत करते हैं किन्तु लंगा, मांगणियार आदि कई जातियों के परिवार में संगीतमय वातावरण होने के कारण उनके बच्चे भी संगीत से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। जिस प्रकार बच्चा जब चलना सीखता है पहले दो बार गिरता है, संभलता है, अपने लड़खड़ाते कदम बढ़ाता हुआ धीरे धीरे स्थिर होता है उसी प्रकार परिवार के अन्य लोगों को सुनता है और अपनी तुतलाती आवाज में गाने का प्रयास करता है। धीरे धीरे उच्चारण साफ होते होते उसके द्वारा गाये जाने वाले गीत में भी परिपक्वता आने लगती है और समयानुसार मुरकी, मीड़, खटका आदि वो सभी अलंकरणों का प्रयोग भी बखूबी करने लगता है। राजा महाराजाओं के समय से ये लोग गाते बजाते आ रहे हैं, महिलाएँ तब भी गाती थी और आज अब भी! प्रत्येक अवसर पर अलग माण्ड गाना ही इनकी शैली है अर्थात समय अवसर को ध्यान में रखकर माण्ड गीतों को गाना ही इनकी विशेषता है इन गीतों को क्रमशः अलग अलग नामों से भी पुकारा जाता है जैसे : मदकर बधावो, धुमालड़ी, अरणी, झेदर, हालरियो, कलाली, डोडा, जांगड़ा, घाटी रा नगारा आदि।

किन्तु माण्ड गायन शैली का कलाकार किसी भी जाति का क्यों ना हो, वर्तमान में वो अपनी कला का प्रदर्शन किसी भी रुप में करे किन्तु तब से लेकर अब तक का इतिहास यही कहता है कि माण्ड गायन शैली धीर गंभीर एवम् विभिन्न रसों से ओत-प्रोत श्रेष्ठ काव्य लिए हुए है तथा राजस्थान की इस गायन शैली का अपना ही महत्व है।

राजस्थान के जन जीवन को दर्शानेवाली ये शैली हमें आजकल उत्सवों मेलों, पर्वों में भी सुनने को मिल जाती है "माण्ड" राजस्थान के जनमानस के ह्रदय में इस तरह रच बस गया है कि मानों इसकी प्रस्तुति के बिना तो कोई भी कार्यक्रम सम्पूर्ण लगता ही नही है।

सरकारी, गैर सरकारी संस्थाए भी इस शैली में निखार लाने व इस शैली को प्रत्येक नागरिक तक पहुचाँने के लिए समय समय पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर में प्रतिवर्ष अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों व संगीत सभाओं का आयोजन किया जाता है इसमें लोक कलाकारों को अपनी कला का प्रदर्शन करने का सुअवसर मिलता है व समय-समय पर सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा कलाकारों को सम्मानित भी किया जाता है ऐसे कार्यक्रमों के द्वारा कलाकार को प्रोत्साहन व श्रोताओं को इस शैली को सुनने का सुअवसर प्राप्त होता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पंचम अध्याय में माण्ड गीतों व उनकी स्वरलीपि से सम्बन्धित है। राजस्थान में गाई जाने वाली माण्ड गीतों को इस अध्याय में सम्मिलित किया गया है, कुछ सर्वप्रचलित माण्ड हैं तो कुछ व्यवसायिक जाति के कलाकारों द्वारा गाई जाने वाली माण्ड!

शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में माण्ड गायकों का साक्षात्कार कुछ प्रचलित माण्ड तथा राजस्थान के विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित हुए कार्यक्रमों की रिकार्डिंगंस आदि को सम्मिलित किया गया है।

शोध प्रबन्ध की अवधि में विभिन्न लोकसंगीत कलाकारों, गायकों एवं संगीत जगत के अग्रणियों, जातिविशेष कलाकारों से सम्पर्क साधने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अध्याय के आरम्भ में माण्ड जगत से जुड़ी उन गायिकाओं का जो आज हमारे बीच नहीं हैं, स्व.अल्लाह जिलाईबाई (बीकानेर), स्व. ललिताबाई (किश्नगढ़) स्व. गवरी देवी (जोधपुर) का सारांश में जीवन वर्णन सम्मिलित किया है।

तत्पश्चात वर्तमान में माण्ड गायन शैली के क्षेत्र में अदभुत व ज्ञानवर्धक जानकारी रखनेवाले विभिन्न कलाकारों, गायक कलाकारों का साक्षात्कार का वर्णन है।

♫♫♫♫♫

शोध प्रबन्ध की उपयोगिता की दृष्टि से कुछ विद्वानों के प्रत्यक्ष साक्षात्कार लिए गए, प्रस्तुत है उसका विवरण।

क्रम	कलाकार का नाम	स्थान	दिनांक
1.	बन्नो बेग़म नियाज़ी जी	जयपुर	15/4/02
2.	श्री चन्द्र गन्धर्व जी	उदयपुर	5/9/02
3.	श्रीमती माँगी बाई जी	उदयपुर	6/9/02
4.	श्री लालू खॉ थइईयम जी	जैसलमेर	27/1/03
5.	राणेखॉ (लंगा)	जैसलमेर	27/1/03
6.	अकलाबाई एवम् रुकमा बाई	जैसलमेर	28/1/03
7.	कु. चेतना बनावत	बनस्थली	25/8/03
8.	श्री जसकरण गोस्वामी जी	बीकानेर	8/1/04
9.	श्री संतोष नाहरजी	बीकानेर	8/1/04
10.	श्री चिरंजीलाल जी	जयपुर	22/7/04
11.	श्रीमती सरस्वती धांघड़ा जी	जयपुर	28/7/04
12.	सुश्री सुधाराजहँस जी	जोधपुर	26/8/05
13.	श्रीमती जमीलाबाई एवम्	जोधपुर	28/8/05
	श्रीमती कुलसुमबाई	जोधपुर	18/7/03

♫♫♫♫♫

शोध प्रबन्ध की उपयोगिता की दृष्टि से शोध प्रबन्ध में सी.डी. संलग्न की गई है, प्रस्तुत है उसका विवरण।

सी.डी. **1.**	**साक्षात्कार**	**(40.49min)**
सी.डी. **2.**	**साक्षात्कार**	**(28.36min)**
सी.डी. **3.**	**अल्लाह जिलाई बाई जी**	**(73.52min)**

- केसरिया बालम आवोनी
- काली काली काजलिएरी(मूमल)
- भर लाए कलाली(कलाली)
- ऐ माँ हेलो देती लाज

बन्नोबेगम नियाजी जी

- हे माँ हेलो देती लाज
- सरस्वती धाँधडा जी
- ऐ जी थाने पखिंरो ढुलावाँ सारी रैन

सी.डी. **4.**	**चिरंजीलाल जी**	**(64.20min)**

- केसरिया ढोला आवोनी

जमीला बाई जी/ कुलसुम बाई जी

- सेंणा रा बायरिया
- मैं तो भूली अन्नदाता
- कुर्जा
- **सेजरिया कैसे आँऊ ढोला चांदनी सी रात**

बनारसी बाबू जी/ चिंरजीलाल जी

- थारे म्हारे राड नहीं जूरी
- म्हलाँ कईयाँ आवूँ चांदनी सी रात

सी.डी. **5.** **लोक कला मण्डल/ संगीत नाटक अकादमी** **(29.43min)**

खुशाली बाई जी

- आयो आयो जैसाणा रो
- शुभरी घडी

गवरी देवी जी/ ललीता बाई जी/ अल्लाह जिलाई बाई जी

- केसरिया बालम

गवरी देवी जी

- छप्पर पुराना
- कुर्जा ए म्हारो
- सुवरिया धीमो

अज्ञात

- अन्नदाता कईयाँ समझाऊँ सा
- रतन राणा

अल्लाह जिलाई बाई जी

- ढोलेरी बाडी में

सरस्वती धाँधडा जी

- भवँर धारी
- विदेसिया थारी

सी.डी. **6.** **A I R जैसलमेर/ उदयपुर** **(47.34min)**

सी.डी. **7.** **A I R बाडमेर/ जयपुर** **(41.52min)**

♫♫♫♫♫

सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची :

क्रम	ग्रन्थ	लेखक
1.	राजस्थान संगीत और संगीतकार	श्री प्रतापसिंह चौधरी
2.	लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन	डॉ.कुलदीप
3.	राजस्थानी लोकगीतोंका सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. मदन लाल शर्मा
4.	राजस्थान के रजवाड़ी गीत	डॉ. जसवन्तसिंह
5.	राजस्थान का लोकसंगीत	श्री रामलाल माथुर
6.	भारतीय संगीत और संगीतज्ञ	श्री रामलाल माथुर
7.	राजस्थानी गीतां रो गजरो	श्री रविप्रकाश नाग
8.	जैसलमेर का सामाजिक एवम् सांस्कृतिक इतिहास	श्री नन्दकिशोर शर्मा
9.	लोक गीतों में समाज	पूर्णिमा श्रीवास्तव जी
10.	चिरमी	सुश्री सुधा राजहँस
11.	ठुमरी परिचय	श्रीमती लीला कारवल
12.	लोक साहित्य और संस्कृति	श्री दिनेश्वर प्रसाद
13.	संगीत विशारद	श्री बसन्त जी
14.	क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-५	पं. भातखण्डे जी
15.	निबन्ध संगीत	श्री बालकृष्ण गर्ग
16.	संगीत दर्शन	श्रीमती विजयलक्ष्मी जैन
17.	अभिनव गीतांजलि - भाग - २	श्री रामाश्रय झा
18.	राग विज्ञान - भाग - १	विनायक राव पटवर्धन
19.	निबन्ध - संगीत	श्री तुलसीरामदेवांगनजी
20.	निबन्ध - संगीत	आचार्य बृहस्पति जी

संगीत मासिक - पत्र, पत्रिकाऐं

संगीत कला विहार	-		अज्ञात
वैचारिकी	-	(बीकानेर अंक)	जनवरी १९७२
रंग योग		राजस्थानी लोकगीत	अज्ञात
संगीत मैन्युअल		डॉ. मृत्युंजय शर्मा	अज्ञात
रंग योग	-		